दिमाग कैसे काम करता है

किशोर

दिमाग़ कैसे काम करता है

किशोर

आवरण एवं रेखांकन : रामबाबू

अनुराग ट्रस्ट

मूल्य : 25 रुपये

पहला संस्करण : 2005

पुनर्मुद्रण : जनवरी, 2010

पुनर्मुद्रण : अगस्त, 2012

प्रकाशक

अनुराग ट्रस्ट

डी - 68, निरालानगर

लखनऊ - 226020

लेजर टाइप सेटिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन

मुद्रक : क्रिएटिव प्रिण्टर्स, 628/एस-28, शक्तिनगर, लखनऊ

हमारा दिमाग़ और उसका काम

वैज्ञानिक सैकड़ों वर्षों से इंसान के दिमाग़ पर अपना दिमाग़ खपाते रहे हैं। ताजा खोजों के आधार पर विज्ञान का कहना है कि आज दिमाग़ की बनावट और काम करने के तरीक़ों की तस्वीर काफ़ी हद तक साफ़ हो चुकी है। जो कुछ अनजाना बचा है, उसपर खोज का काम लगातार जारी है।

मस्तिष्क की बनावट : एक नक़्शा

खोपड़ी के भीतर यदि झाँककर देखा जाये तो इंसानी दिमाग़ अखरोट की गिरी जैसा सलवटदार और जेली की तरह कोमल दीखेगा। ऊपर से गुलाबी धूसर दीखने वाला मस्तिष्क भीतर से पीला-सफ़ेद होता है। इसके तीन भाग होते हैं – अगला मस्तिष्क,

बीच का भाग और पिछला मस्तिष्क। अगला या सबसे ऊपरी मस्तिष्क वैज्ञानिक भाषा में 'सेरीब्रम' कहलाता है। यह सबसे बड़ा हिस्सा होता है और दो भागों में बँटा होता है। इसके ऊपरी सतह पर पड़ी सलवटों को 'काटेक्स' कहते हैं। इसकी पर्त की मोटाई कहीं एक मिलीमीटर से भी कम तो कहीं तीन मिलीमीटर तक होती है। इसकी सलवटों को खोलकर यदि रूमाल की तरह बिछा दिया जाये तो उसका क्षेत्रफल दो हज़ार वर्ग मिलीमीटर होगा। 'कार्टेक्स' की पर्त के नीचे अलग-अलग समूहों में बँटे तन्त्रिकाओं के गुच्छे होते हैं जिन्हें अलग-अलग वैज्ञानिक नामों से जाना जाता है। मस्तिष्क के बीच का हिस्सा भी दो भागों में बँटा होता है – 'टेक्टम' या छत और 'कॉलिकुलाई' या पहाड़ों जैसे उभार। मस्तिष्क का पिछला हिस्सा 'सेरीबेलम' कहलाता है जो पीछे की ओर उभरा हुआ दिखायी देता है। इसे छोटा मस्तिष्क भी कहा जाता है।

मस्तिष्क के भीतर आपस में जुड़ी हुई 'वेण्ट्रिकिल्स' नामक थैलियाँ मौजूद होती हैं जिनमें एक ख़ास द्रव पदार्थ भरा होता है। तरह-तरह के अचरज भरे काम करने वाली मस्तिष्क की कोशिकाओं को 'न्यूरान' कहते हैं। इनकी संख्या लगभग एक अरब बतायी जाती है। इनसे बेहद बारीक और लम्बी, धागे जैसी चीज़ें निकली रहती हैं जिन्हें 'डेण्ड्राइट्स' कहा जाता है। सन्देशों का आदान-प्रदान इन्हीं के ज़रिये होता है। ये आपस में जुड़कर इस सृष्टि का जटिलतम नेटवर्क बनाती हैं। 'डेण्ड्राइट्स' की लम्बाई दो से सात मिलीमीटर तक हो सकती है। मज़े की बात यह है कि सन्देश लेने-देने के लिए इनके सिरे आपस में जुड़े नहीं रहते। उनके बीच एक बेहद बारीक 'गैप' छूटा रहता है जिन्हें 'सिनैप्स' कहा जाता है। मस्तिष्क के नेटवर्क में 'सिनैप्स' की संख्या तीन खरब से भी ज़्यादा होती है। सन्देशों के आदान-प्रदान के लिए ज़रूरी बिजली की तरंगों को उचित दिशा और शक्ति देने के लिए 'सिनैप्स' महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

मस्तिष्क का वज़न कुल शरीर के वज़न का लगभग दो फ़ीसदी होता है। एक बच्चे के मस्तिष्क का औसत वज़न सिर्फ़ 350 ग्राम होता है जबकि एक वयस्क

आदमी के मस्तिष्क का औसत वज़न 1400 ग्राम होता है। हर समय सक्रिय रहने और ढेर सारी ज़िम्मेदारियों के बोझ के कारण शरीर को मिलने वाली कुल आक्सीजन का बीस फ़ीसदी हिस्सा मस्तिष्क में ही खप जाता है।

स्त्रियों और पुरुषों के बीच दिमाग़ी अन्तर

वैज्ञानिक शोधों से पता चला है कि महिलाओं और पुरुषों के दिमाग़ की बनावट समान दीखते हुए भी उनकी कार्य-प्रणाली में कई तरह के अन्तर मौजूद होते हैं। आकार में महिलाओं का दिमाग़ पुरुषों की तुलना में औसतन दस-पन्द्रह फ़ीसदी छोटा होता है, पर इसकी भरपाई करने के लिए उनके दिमाग़ के कई हिस्सों में कोशिकाएँ ठूँस-ठूँसकर भरी होती हैं। साथ ही, महिलाओं का दिमाग़ इस काबिल भी होता है कि वह एक समय में कई बातें सोच सके। अमेरिका के मस्तिष्क विशेषज्ञ मार्क जार्ज के

अनुसार, जब महिलाएँ कोई मामूली-सा काम भी करती हैं तो उनके दिमाग़ में जगह-जगह कोशिकाएँ सक्रिय हो जाती हैं। दूसरी ओर, पुरुष जब कोई काम करते हैं तो केवल उस कार्य-विशेष के लिए निर्धारित क्षेत्र की कोशिकाएँ ही सक्रिय होती हैं। यानी महिलाएँ एक काम करते हुए कई दिशाओं में सोच सकती हैं, जबकि पुरुष कोई काम करते हुए उसी में डूब जाते हैं। यह भी पाया गया है कि महिलाओं के दिमाग़ के दायें और बायें हिस्से में लगातार बातचीत होती रहती है, जबकि पुरुषों के दिमाग़ में ऐसा नहीं होता। ग़ौरतलब है कि दिमाग़ के दायें हिस्से पर भावनाओं और सहज बुद्धि या अन्तर्ज्ञान की ज़िम्मेदारी होती है जबकि बायाँ हिस्सा अधिक तार्किक ढंग से सोचने-विचारने और वास्तविकताओं की जाँच-परख-अध्ययन का काम करता है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि शायद इसी वजह से महिलाएँ ढेर सारी चीज़ों पर सहज बुद्धि या तर्क और भावना के संश्लेषण से जल्दी फ़ैसले पर पहुँच जाती हैं जबकि पुरुष या तो तार्किक विवेचना पर ज़ोर देता है या फिर एकदम भावनाओं में बहकर फ़ैसले लेता है। और शायद यह भी एक कारण है कि किसी आदमी की नीयत और भावनाओं को ताड़ने-भाँपने में महिलाएँ पुरुषों के मुक़ाबले अधिक कुशल और तेज़ पायी जाती हैं।

इन भिन्नताओं के बावजूद, विज्ञान आज स्पष्ट मानता है कि पुरुषों और स्त्रियों की बौद्धिक क्षमताओं में कोई बुनियादी अन्तर नहीं होता। यदि स्त्रियाँ जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में आज पीछे हैं और प्राय: धोखा और छल का शिकार हो जाती हैं तो इसका कारण उनकी बौद्धिक क्षमता की प्राकृतिक कमी नहीं बल्कि उनकी सामाजिक स्थिति है। जीवन के हर क्षेत्र में उन्हें दोयम दर्जे का नागरिक बनाकर पीछे धकेल दिया गया है। यह स्थिति भारत जैसे पिछड़े और अशिक्षा से भरे देशों में ज़्यादा है, पर उन्नत पश्चिमी देशों में भी स्त्रियाँ पुरुषों के दमन-उत्पीड़न का शिकार हैं। सभी जगह उनका श्रम सस्ता है। उन पर घरेलू कामों का और बच्चों के लालन-पालन का बोझ है और

तरह-तरह के दबाव हैं। इन दबावों का बोझ लगातार उनके दिमाग़ पर रहता है और घरेलू दासता के कारण बाहरी दुनिया के तथ्यों की जानकारी भी उन्हें पुरुषों से कम होती है। इसके बावजूद विज्ञान से लेकर कला-साहित्य हर क्षेत्र में महिलाओं के बीच से इतनी महान विभूतियाँ और इतनी बड़ी संख्या सामने आयी है और बढ़ती जा रही है।

फिर भी यह सवाल हमारे सामने बचा रह जाता है कि आख़िर हमारा दिमाग़ काम कैसे करता है?

शतरंज के पूर्व चैम्पियन गैरी कास्पारोव जब दुनिया के सबसे क्षमतावान कम्प्यूटर 'डीप ब्ल्यू' के हाथों हार गये थे तो यह सवाल उठने लगा था कि क्या कम्प्यूटर का कृत्रिम दिमाग़ मानव के कुदरती दिमाग़ से अधिक तेज़ है? अगले कुछ ही प्रयोगों में 'डीप ब्ल्यू' की हार के साथ यह साफ़ हो गया कि इंसान के उस कुदरती दिमाग़ का

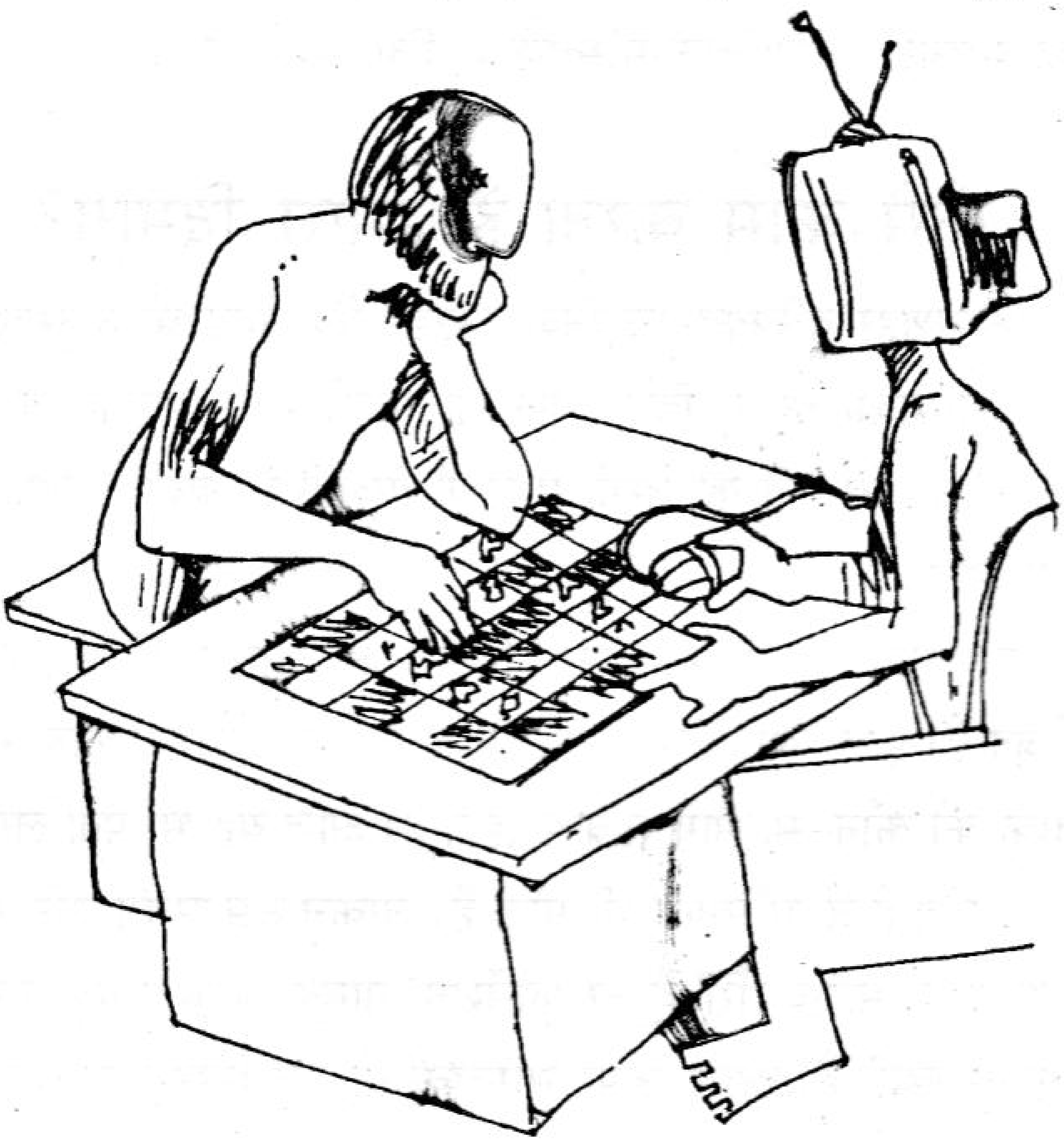

कोई सानी नहीं है जिसके बूते आज वह पूरी धरती का स्वामी है और पूरे ब्रह्माण्ड को थाहने की कोशिशें कर रहा है। करोड़ों वर्षों की प्राकृतिक प्रक्रिया में पदार्थ के जड़ रूप से चेतन रूप विकसित हुआ है और इंसान पैदा हुआ है जिसके पास दिमाग़ की जैव-रासायनिक संरचना है और जिसका नायाब-लासानी गुण है – चेतना। इंसान ही कम्प्यूटर के दिमाग़ को तथ्य देता है और नतीजे निकालने की पद्धति के रूप में तर्क देता है। इस रूप में कम्प्यूटर इंसान के दिमाग़ का बाहरी, यान्त्रिक विस्तार है। यह इंसानी दिमाग़ के लासानी-बेजोड़ करिश्मों में से एक है, पर यह कभी भी इंसानी दिमाग़ की जगह नहीं ले सकता, क्योंकि इंसानी दिमाग़ की अपनी स्वतन्त्र प्राकृतिक गति है। यह प्रकृति और समाज से जानकारियाँ लेता हुआ लगातार अपने को उन्नत बनाता जाता है। यह सामान्य तर्क के अतिरिक्त संवेदनात्मक-भावनात्मक स्तर पर भी सोचता है जो कम्प्यूटर के यांत्रिक मस्तिष्क के लिए सम्भव नहीं।

कैसे काम करता है हमारा दिमाग़?

इंग्लैण्ड के मशहूर तन्त्रिका-वैज्ञानिक विल्डर पेनफ़ील्ड के अनुसार, काम करने के नज़रिये से मस्तिष्क के दो हिस्से माने जा सकते हैं – पहला 'ब्रेन' और दूसरा 'माइण्ड'। 'ब्रेन' को बिजली की तरंगों से ऊर्जा मिलती है, जबकि 'माइण्ड' के ऊर्जा के स्रोत अभी अज्ञात हैं।

आज सोते-जागते, किसी भी समय, दिमाग़ को काम करते हुए देखने की कई तकनीकें मौजूद हैं। इनके ज़रिये यह पता लगाया जा चुका है कि कौन-सा काम करते समय मस्तिष्क को कौन-सा भाग सक्रिय रहता है। आज यह भी पता लगाया जा चुका है कि जब हम सोते हैं तो मस्तिष्क भी सोता है। लेकिन उस समय मस्तिष्क के पिछले हिस्से 'ब्रेन स्टेम' में मौजूद 'रिटिकुलर फ़ार्मेशन' नामक संरचना एक सजग चौकीदार की तरह जागती रहती है। इसके ऊपर मस्तिष्क के उन हिस्सों को न्यूनतम स्तर पर

सक्रिय रखने की ज़िम्मेदारी होती है जो हमारे ज़िन्दा रहने के लिए ज़रूरी हैं। मसलन नींद में हमारे दिल की धड़कन और साँसों की रफ़्तार कम हो जाती है, पर पाचन-क्रिया तेज़ हो जाती है। मांसपेशियाँ शिथिल पड़ जाती हैं लेकिन करवट बदलने जैसी क्रियाएँ जारी रहती हैं। नींद के समय दिमाग़ भी सोया रहता है पर दिमाग़ का कोई हिस्सा ऐसा भी सक्रिय रहता है कि कोई ख़तरा या अनजान आहट के समय चौकन्ना हो जाता है। दिमाग़ की इस विशेषता के बारे में वैज्ञानिक अध्ययन अभी भी जारी है।

नींद के साथ जुड़ी एक बहुत बड़ी पहेली सपनों की भी है। नयी खोजों से पता चला है कि सपने देखते समय हमारा दिमाग़ काम करने लगता है। इस समय मस्तिष्क की ओर ख़ून का बहाव तेज़ हो जाता है। मांसपेशियाँ सख़्त पड़ जाती हैं और निगाहें दिखने वाले दृश्य के अनुसार डोलने लगती हैं। यदि सपना डरावना हुआ तो गला सूख जाता है, पसीना बहने लगता है, मुट्ठिया भिंच जाती हैं और कभी-कभी तो आदमी रोने या घिघियाने भी लगता है। नयी खोजों के अनुसार, सपनों को चेतन और अवचेतन मस्तिष्क के बीच बहती हुई नदी के समान बताया जा रहा है, जिसमें विचारों के प्रवाह

पर तर्क का अंकुश समाप्त हो जाता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ़्रायड ने सपनों पर अतीत के प्रभाव और उनके ज़रिये मानसिक स्थिति के अध्ययन की कोशिश की। उन्हीं के समय से सपनों में घटी घटनाओं में भविष्य की झाँकी देखने की भी कोशिशें जारी हैं, पर अभी भी वे अटकलबाज़ी से आगे नहीं जा सकी हैं। सपनों के बारे में वैज्ञानिक यह नतीजा अवश्य निकाल रहे हैं कि सपनों के दौरान मस्तिष्क दिन-भर की घटनाओं की छँटाई और विश्लेषण के बाद ज़रूरी चीज़ों को याद्दाश्त के ख़ाने में जमा करता जाता है। यानी अच्छी याद्दाश्त के लिए सपने देखना ज़रूरी है! इतना तय है कि सपनों का रिश्ता किसी न किसी रूप में अवचेतन मस्तिष्क से है, पर अवचेतन मस्तिष्क की कार्य-प्रणाली के बारे में वैज्ञानिकों की जानकारी अभी ऊपरी या प्रेक्षण के स्तर की ही है, ठोस नहीं है।

दरअसल आधुनिक खोजों ने साबित कर दिया है कि मानव-मस्तिष्क दो प्रकार से सोचता-विचारता है। पहले तरीक़े में, चेतन मस्तिष्क तार्किक और मुखर रूप से विचार करता है जबकि दूसरे तरीक़े में, अवचेतन मस्तिष्क बिना किसी तार्किक आधार के, ग़ैर-मौखिक तरीक़े से सोचता-विचारता है। इस दूसरे तरीक़े को ही अन्तर्ज्ञान, सहज बुद्धि या 'इण्ट्यूशन' कहा जाता रहा है। इसे आम बोलचाल में लोग छठी इन्द्रिय, दिल की आवाज़ या 'गल फ़ीलिंग' भी कहते हैं। इस अन्तर्ज्ञान की प्रक्रिया की ठोस-ठोस जानकारी तो अभी वैज्ञानिकों को नहीं हो सकी है, लेकिन सपनों को अन्तर्ज्ञान का एक कारगर स्रोत माना जाता है। कई बार दिन-भर की समस्याओं का हल सपने में किसी संकेत के रूप में दीख जाता है। ग़ौरतलब है कि कई महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक खोजें सपनों की देन रही हैं। यानी आपका चेतन मस्तिष्क यदि किसी समस्या का हल निकालने में असफल रहा हो, और आप अवचेतन मस्तिष्क की मदद चाहते हों तो उस समस्या पर विचार करते हुए सो जाइये। मुमकिन है कि जगने पर कोई नयी रोशनी दीख जाये और कोई राह सूझ जाये।

अन्तर्ज्ञान कहाँ से उपजता है? यानी अवचेतन मस्तिष्क किधर है? – दायीं ओर या बायीं ओर? आधुनिक खोजों ने कार्य के स्तर पर दायें और बायें मस्तिष्क के बँटवारे को पूरी तरह नकार दिया है। अभी तक माना जाता था कि कुछ ख़ास काम दायाँ मस्तिष्क करता है और कुछ ख़ास काम बायाँ। पर अब पता चला है कि मस्तिष्क के बीच काम के विषयों का बँटवारा नहीं है, बल्कि काम करने के तरीक़े में फ़र्क़ है। मस्तिष्क का एक हिस्सा किसी समस्या पर व्यापक रूप में विचार करता है, जबकि दूसरा हिस्सा उसके किसी एक बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित करके गहराई में जाकर विचार करता है। स्कॉटलैण्ड के सेण्ट एण्ड्रयूज़ विश्वविद्यालय के मनोवैज्ञानिक माइकेल रग के परीक्षणों से पता चला है कि मस्तिष्क में बहुत-सी जानकारी ऐसी भी होती है जिसे चेतन अवस्था में हासिल नहीं किया जा सकता। हाँ, अवचेतन मस्तिष्क इस ज्ञान तक पहुँचकर लाभ उठा सकता है।

मनुष्य का दिमाग़ ज्ञान कैसे ग्रहण करता है और इस प्रक्रिया के रूप क्या हैं तथा ज्ञान के धरातल कितने हैं? दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक इस प्रश्न पर काफ़ी पहले से सोचते रहे हैं।

आम वैज्ञानिक धारणा यह है कि व्यवहार की प्रक्रिया में इंसान प्रकृति और समाज की विभिन्न चीज़ों को देखता है, छूता है, सूँघता है और सुनता है। ऐसा वह बार-बार, विभिन्न परिस्थितियों में, विभिन्न पहलुओं से करता है। उसकी इन्द्रियाँ चीज़ों के बारें में ज़्यादा से ज़्यादा जानकारी मस्तिष्क को भेजती हैं। दिमाग़ इन जानकारियों से चीज़ों के ऊपरी स्वरूप के बारे में शुरुआती नतीजे निकालता है तथा संवेदनों-संस्कारों का जन्म होता है। यह ज्ञान-प्राप्ति की पहली मंज़िल होती है – इन्द्रिय-संवेदन की मंज़िल। इस ज्ञान को इन्द्रियबोधी ज्ञान कहते हैं।

व्यवहार की यही क्रिया बार-बार दोहरायी जाती है और मस्तिष्क का एक हिस्सा बहुत से इन्द्रियबोधी ज्ञान के अम्बार से सत्व को निचोड़कर धारणाओं और विचारों का

निर्माण करता है। इस प्रक्रिया को 'अमूर्तीकरण की प्रक्रिया' कहते हैं और उन्नत स्तर के इस ज्ञान को बुद्धिसंगत ज्ञान कहते हैं। वैज्ञानिक अभी भी ठोस रूप में यह नहीं पता लगा सके हैं कि मस्तिष्क में अमूर्तीकरण की क्रिया किस रूप में घटित होती है और इन्द्रियबोधी ज्ञान बुद्धिसंगत ज्ञान में किस प्रकार रूपान्तरित होता है?

इंसानी दिमाग़ की तमाम क्षमताओं में स्मृति या याद्दाश्त की सबसे ख़ास जगह है। चीज़ों, घटनाओं और लोगों को तो आवश्यकतानुसार याद रखना पड़ता है, पर अतीत में बनाये गये विचारों-धारणाओं को यदि हम भूलते चलें तो न तो कभी आगे विकास कर सकते हैं और न ही नयी खोज कर सकते हैं। तब हम बस अपने को सिर्फ़ दोहराते ही रह जायेंगे।

याद्दाश्त कहाँ रहती है और कैसे बनी रहती है?

सबसे पहले तो यह जानना ज़रूरी है कि हमारे दिमाग़ में याद्दाश्त कहाँ रहती है? आधुनिक खोजों से पता चला है कि मस्तिष्क के 'टेम्पोरल लोब' के नीचे (कान के ऊपर) स्थित 'हिप्पोकैम्पस' नामक एक छोटी-सी संरचना में लघु अवधि की, यानी कुछ घण्टों से लेकर एक सप्ताह तक की याद्दाश्त समायी रहती है जबकि दीर्घ अवधि की या स्थायी याद्दाश्त 'सेरीब्रल कार्टेक्स' में जगह-जगह स्थित केन्द्रों में मौजूद रहती है। इसलिए किसी एक समय में हमारे दिमाग़ में मौजूद सारी जानकारी को थाह लेना मुमकिन नहीं। यूँ कहें कि हम खुद नहीं

जानते कि हम क्या-क्या जानते हैं! कभी-कभी हमें पूरी तरह भूली-बिसरी कई घटनाएँ किसी एक शब्द या दृश्य के आते ही अचानक याद आ जाती हैं। वैज्ञानिक अभी भी उन कारणों की तलाश में लगे हैं जिनके चलते भूली-बिसरी घटनाएँ अचानक बिजली की तरह दिमाग़ में कौंध जाती हैं।

हाल के कुछ प्रयोगों से इतना अवश्य पता चला है कि पुरानी यादों को जगाने में सुगन्ध या महक़ की भी एक अहम भूमिका होती है। नयी खोजों से पता चला है कि हमारे मस्तिष्क में तीन तरह की याद्दाश्त होती हैं। पहली तात्कालिक याद्दाश्त होती है, यानी जो देखा वह तुरन्त दिमाग़ में फ़ोटो की तरह अंकित हो गया। पर यदि यह हमारे लिए महत्त्वपूर्ण नहीं होता या हम इसे तवज्जो नहीं देते तो एक मिनट से भी कम समय में यह दिमाग़ की स्लेट से यूँ पुँछ जाता है जैसे कि हमने कुछ देखा ही न हो। जिन दृश्यों पर हम कुछ सोचते हैं या ध्यान देते हैं उन्हें दिमाग़ लघु अवधि याद्दाश्त के लिए 'हिप्पोकैम्पस' में भेज देता है। ये यादें क़रीब एक हफ़्ते तक वहाँ टिकी रहती हैं पर इनकी तीक्ष्णता धीरे-धीरे घटती जाती है। 'हिप्पोकैम्पस' में यादों की छँटाई और उन्हें व्यवस्थित करने का काम भी होता है। इसके बाद नम्बर आता है दीर्घ अवधि के, या स्थायी याद्दाश्त का। 'हिप्पोकैम्पस' में मौजूद जिन चीज़ों को हम बार-बार देखते,

दुहराते और याद करते हैं, वे स्थायी याद्दाश्त के केन्द्र में चली जाती हैं। फिर भी उन्हें टिकाऊ बनाये रखने के लिए बार-बार दोहराना ज़रूरी है।

भूलना भी ज़रूरी है!

अभी तक हमने सिर्फ़ याद रखने की बातें कीं। याद रखने का महत्त्व तो हमें अक्सर बताया जाता है। पर यह भी याद रखना चाहिए कि याद रखने से भी कहीं अधिक ज़रूरी है भूलना। यदि हम ग़ैरज़रूरी या अनुपयोगी हो चुकी चीज़ों से स्मृतियों के भण्डार-घर को ठूँसे रहेंगे तो एक समय आयेगा जब ज़रूरी जानकारियों के लिए जगह ही नहीं बचेगी। आज कम्प्यूटर और 'इण्टरनेट' से हमें सूचनाओं का अम्बार मिलता है। जो उसी में खो जाते हैं, उनके पास विचार करने के लिए समय ही नहीं मिलता। हमारे मस्तिष्क में याद रखने के साथ ही भूलने के भी इन्तज़ाम मौजूद हैं। यदि हम भूलना भूल जायें तो कड़वी, दुखद और कष्टदायी घटनाओं की यादें हमें मानसिक रूप से विक्षिप्त कर सकती हैं। इसलिए हम रोज़ नियमित रूप से कुछ न कुछ भूलते हैं। बुढ़ापे में मस्तिष्क की कोशिकाओं की तादाद घटने लगती है, जिससे आदमी भुलक्कड़ हो जाता है। भुलक्कड़पन कभी-कभी एक मनोवैज्ञानिक बीमारी भी होती है जिसे मानसिक इलाज से ठीक किया जाता है। कभी-कभी ब्रेन

ट्यूमर, सिर में चोट, मानसिक सदमा या इन्सेफ़ेलाइटिस-मेनिंजाइटिस से भी याद्दाश्त खो जाती है। बहुत अधिक शराबख़ोरी और अनिद्रा से भी याद्दाश्त प्रभावित होती है। याद्दाश्त खोने को डॉक्टर लोग 'एमनेसिया' कहते हैं। यह दो तरह की होती है। एक में बीमारी के पहले की घटनाओं की याद का सफाया हो जाता है। दूसरे में, रोग के बाद आदमी कुछ भी याद रखने लायक़ नहीं रह जाता।

याद्दाश्त बढ़ाने के लिए आज तमाम क़िस्म की गोलियाँ-कैप्सूल भी चलन में हैं। पर इनका प्रभाव चिकित्सा-विज्ञान द्वारा प्रमाणित नहीं हो सका है। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि याद्दाश्त बढ़ाने का सबसे सटीक तरीक़ा है इसका ज़्यादा से ज़्यादा इस्तेमाल करना। याद्दाश्त की धार पर सान चढ़ाते रहने के लिए 'मेमोरी गेम्स' या शतरंज खेलना कारगर उपाय हैं। डायरी लिखने और जब-तब उसके पन्ने पलटते रहने से याद्दाश्त ताज़ा होती रहती है।

ज़रूरी आँकड़ों-जानकारियों को याद रखने के लिए दिमाग़ को बीच-बीच में आराम देना बहुत ज़रूरी होता है। आराम के क्षणों में ही दिमाग़ में याद्दाश्त को रासायनिक रूप से दर्ज करने की क्रिया सम्पन्न होती है। कुछ ताज़ा खोजों से पता चला है कि यदि कुछ घण्टे मानसिक काम करने के बाद सीढ़ियाँ चढ़ी जायें, टहला जाये या कोई दूसरा शारीरिक काम किया जाये तो याद्दाश्त तेज़ होती है। इसका कारण यह है कि

लघु अवधि याद्दाश्त को दीर्घ अवधि याद्दाश्त में बदलने वाले दो रसायन – 'इपीनेफ़्रीन' और 'नाइपीनेफ़्रीन' शारीरिक कार्यों के दौरान तेज़ी से निकलते हैं। मानसिक सदमा, भावनात्मक झटका या आकस्मिक खुशी के समय भी ऐसा ही होता है। इसीलिए बेहद सुखद या दुखद घटनाएँ यादगार बन जाती हैं।

यह पाया गया है कि मानसिक तनाव में जीने वालों के हिप्पोकैम्पस में कोशिकाओं की तादाद घटने लगती है। इसीलिए तनावग्रस्त दिमाग़ आँकड़ों और जानकारियों को याद नहीं रख पाता।

याद्दाश्त बढ़ाने वाले जीन का पता लगाना हाल की सबसे रोमांचक खोजों में से एक है। 1999 में अमेरिका के प्रिंसटन विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक जोसेफ़ सियेन ने एक चूहे में इस जीन को डालकर उसे 'स्मार्ट' बना दिया। 'डूँगी' नाम का यह चूहा आजकल चर्चा का विषय बना हुआ है।

'ऐरोबिक्स' और सुबह की सैर से मस्तिष्क की वैचारिक शक्ति बढ़ती है। आजकल यह माना जा रहा है कि योग साधना और ध्यान (किसी एक विषय पर ध्यान केन्द्रित करने का विशेष पद्धति से अभ्यास) से भी मानसिक क्षमता बढ़ती है। योगासनों में शवासन और प्राणायाम का विशेष महत्त्व बताया जा रहा है। चाय और कॉफ़ी में मौजूद कैफ़ीन लोगों की दिमाग़ी सक्रियता को तेज़ कर देता है। पर बच्चों को इनका

सेवन नहीं करना चाहिए। बड़ों को भी इनके अधिक सेवन से नुक़सान होता है।

नयी खोजों से पता चला है कि मानसिक क्षमताओं को बढ़ाने और दिमाग़ को चुस्त बनाये रखने के लिए दिमाग़ को समय-समय पर आराम ज़रूर मिलना चाहिए। हमारे दिमाग़ में एक जैविक घड़ी लगी होती है, जो बताती है कि कब काम करने का समय है और कब सोने का। हाल ही में अमेरिका के बोस्टन विश्वविद्यालय के 'स्कूल ऑफ़ मेडिसिन' में हुई खोजों से पता चला है कि 'ओवरटाइम' करने से मस्तिष्क की क्षमता घटती है। इससे एकाग्रता लगभग ख़त्म हो जाती है और फ़ैसले ग़लत होने लगते हैं। वैज्ञानिकों का विचार है कि हफ़्ते में पाँच दिन, और हर दिन अधिकतम पाँच घण्टे काम करना ही सबसे बेहतर होता है।

नयी खोजों से यह भी पता चला है कि पश्चिमी या भारतीय – दोनों ही धाराओं का शास्त्रीय संगीत सुनने से मस्तिष्क की तार्किक क्षमता में इज़ाफ़ा होता है जबकि शोरगुल भरा तेज़ संगीत इसके उल्टा प्रभाव डालता है। यह भी पाया गया है कि हिंसा और अमानवीयता से भरे नाटक, सिनेमा, टी.वी. सीरियल आदि भी हमारी भावनात्मकता के साथ-साथ तार्किकता को भी कुन्द करते हैं जबकि गहरी मानवीयता से ओतप्रोत सांस्कृतिक माध्यम हमारे दिमाग़ को ताज़ादम करने का काम करते हैं।

औसत से अधिक बुद्धिमान और अत्यधिक बुद्धिमान लोग तो समाज में प्रायः मिल जाते हैं, पर जीनियस लोग, जो विज्ञान, साहित्य-कला या राजनीति में युगों-युगों तक याद रखा जाने वाला कोई ग़ैरमामूली क़िस्म का काम कर जाते हैं, वे बिरले ही होते हैं।

समाज में आम तौर पर जो लोग बुद्धिमान माने जाते हैं, प्रायः उनका दिमाग़ आम लोगों जैसा ही होता है। मुख्य फ़र्क़ उस माहौल से पड़ जाता है जिसमें उनकी परवरिश होती है। ग़रीबी, अभाव, पारिवारिक तनाव के माहौल में बहुतेरे बच्चों की प्रतिभा दब-कुचलकर रह जाती है। वहीं बेहतर सामाजिक हैसियत वाले परिवारों में सामान्य प्रतिभा को भी फलने-फूलने का पूरा अवसर मिल जाता है।

लेकिन जीनियस लोगों की बात आम बुद्धिमान लोगों से भिन्न होती है। जीनियस बिरले होते हैं। जैसे – न्यूटन, आइंस्टीन और आज के स्टीफ़ेन हाकिन्स जैसे वैज्ञानिकों को; सुकरात, बुद्ध और मार्क्स जैसे दार्शनिकों को; बीथोवेन और मोत्जार्ट जैसे संगीतकारों को या शेक्सपियर, कालिदास, तोल्स्तोय जैसे साहित्यकारों को जीनियस की श्रेणी में रखा जा सकता है।

जीनियस का दिमाग़

लम्बे समय से वैज्ञानिकों की दिलचस्पी यह जानने में रही है कि आम दिमाग़ों से जीनियस के दिमाग़ की क्या भिन्नता होती है।

हाल ही में इससे सम्बन्धित एक बहुत ही दिलचस्प अध्ययन सामने आया है। जीनियस के दिमाग़ की बनावट के अध्ययन के उद्देश्य से, 1955 में आइंस्टीन की मृत्यु के बाद उनका दिमाग़ सुरक्षित रख लिया गया था। कई कारणों से अध्ययन का यह काम काफ़ी देर से, 1996 में शुरू हुआ और 1999 में इसके नतीजे 'लैसेट' नामक शोध पत्रिका में प्रकाशित हुए।

आइंस्टीन के मस्तिष्क का 'पैराइटल लोब' नामक हिस्सा सामान्य से 15 फ़ीसदी अधिक चौड़ा पाया गया। यही मस्तिष्क का वह हिस्सा है जो गणितीय विचारों और कल्पनाओं के ताने-बाने बुनता है। 'पैराइटल लोब' का आकार बड़ा होने के कारण

आइंस्टीन के मस्तिष्क का 'पैराइटल आपरकुलम' नामक हिस्सा ठीक से बन नहीं पाया था और मस्तिष्क के ऊत्तकों को बाँटने वाली 'सिल्वियन फ़िशर' नामक दरार भी ठीक से बन नहीं पायी थी। इसके कारण मस्तिष्क की कोशिकाएँ एक-दूसरे से ख़ूब अच्छी तरह से सट गयी थीं और उनका आपसी सम्पर्क भी ख़ूब बढ़ गया था। इससे आइंस्टीन के दिमाग़ में जानकारियों और विचारों का आदान-प्रदान तेज़ी से और कुशलतापूर्वक होता होगा तथा इससे मौलिक विचारों के जन्म को बढ़ावा मिलता होगा। पर यह वैज्ञानिकों का एक अनुमान या एक सम्भावना-मात्र ही है। यह दावे के साथ नहीं कहा जा सकता कि आइंस्टीन के जीनियस होने के यही कारण थे।

जीनियस के जन्म से जुड़े हुए कई विरोधाभास भी रहे हैं। कई मामलों में देखा गया कि बचपन में जिनका आई. क्यू. काफ़ी अच्छा था, वे आगे चलकर सामान्य इंसान ही बन सके। दूसरी ओर, कई लोग जो आगे चलकर किसी न किसी क्षेत्र में जीनियस निकले, वे बचपन में सामान्य प्रतिभा के लोग थे और कभी-कभी तो पढ़ने-लिखने में फिसड्डी भी थे।

यह तय है कि जीनियस किसी को पढ़ा-लिखाकर नहीं बनाया जा सकता। दूसरी ओर यह भी तय है कि उचित माहौल, शिक्षा-दीक्षा और कड़ी मेहनत के बग़ैर जीनियस का दिमाग़ होते हुए भी कोई आदमी ज़िन्दगी में फिसड्डी बना रह सकता है।

जीनियस के जन्म से जुड़ा एक विरोधाभास यह भी है कि किसी माता-पिता की सभी सन्तानें जीनियस नहीं होतीं। फिर जीनियस का जन्म कैसे होता है? हाल में हुई मानव जीनोम की खोज से पता चला है कि प्रत्येक मनुष्य के भौतिक और भावनात्मक अस्तित्व का आधार कोई एक लाख जीन के जोड़े होते हैं। इन जोड़ों में से एक माँ की देन होता है और दूसरा पिता की। जीनों का यह कुदरती संयोग ही कभी-कभार ऐसी रचना कर डालता है कि उस जीनोम का स्वामी जीनियस हो जाता है।

लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं कि केवल जीनोम के दम पर ही कोई व्यक्ति

जीनियस हो सकता है। जन्मजात प्रतिभा को पनपने-निखरने के लिए यदि उपयुक्त माहौल और सुविधाएँ न मिलें तो गुमनामी के अँधेरे में खो जाने के अतिरिक्त उनका अन्य कोई विकल्प नहीं हो सकता।

हाल की कुछ खोजों से एक अजीबोग़रीब दिलचस्प तथ्य यह भी सामने आया है कि सनक, खब्तीपन और यहाँ तक कि खण्डित-मनस्कता (सिज़ोफ़्रेनिया) भी व्यक्ति की किसी क्षेत्र विशेष में सृजनशीलता बढ़ा देते हैं और उसे जीनियस बनने में मदद करते हैं। सनक के कारण व्यक्ति को नया काम करने के लिए अतिरिक्त ऊर्जा मिलती है। खण्डित-मनस्कता विचारों को नयी दिशा देने का काम करती है। पर इसका मतलब यह भी नहीं कि हर सनकी या खब्ती जीनियस होता है, और यह भी नहीं कि हर जीनियस अनिवार्यत: खब्ती या सनकी होता ही हो।

बहरहाल, मानव मस्तिष्क बहुत सारी खोजों के बावजूद, वैज्ञानिकों के लिए, ब्रह्माण्ड की ही तरह, अभी भी काफ़ी हद तक अबूझा और अजाना है। नित नयी खोजों का सिलसिला जारी है। आदमी का दिमाग़ लगातार दिमाग़ की थाह पाने के लिए जूझ रहा है। नयी सदी में विज्ञान शायद इंसानी दिमाग़ की और साफ़ तस्वीर पेश कर सके।

(मुख्यतः जगदीप सक्सेना के लेख 'नयी रोशनी में नहाया दिमाग़' और कुछ अन्य लेखों-टिप्पणियों-रिपोर्टों पर आधारित)

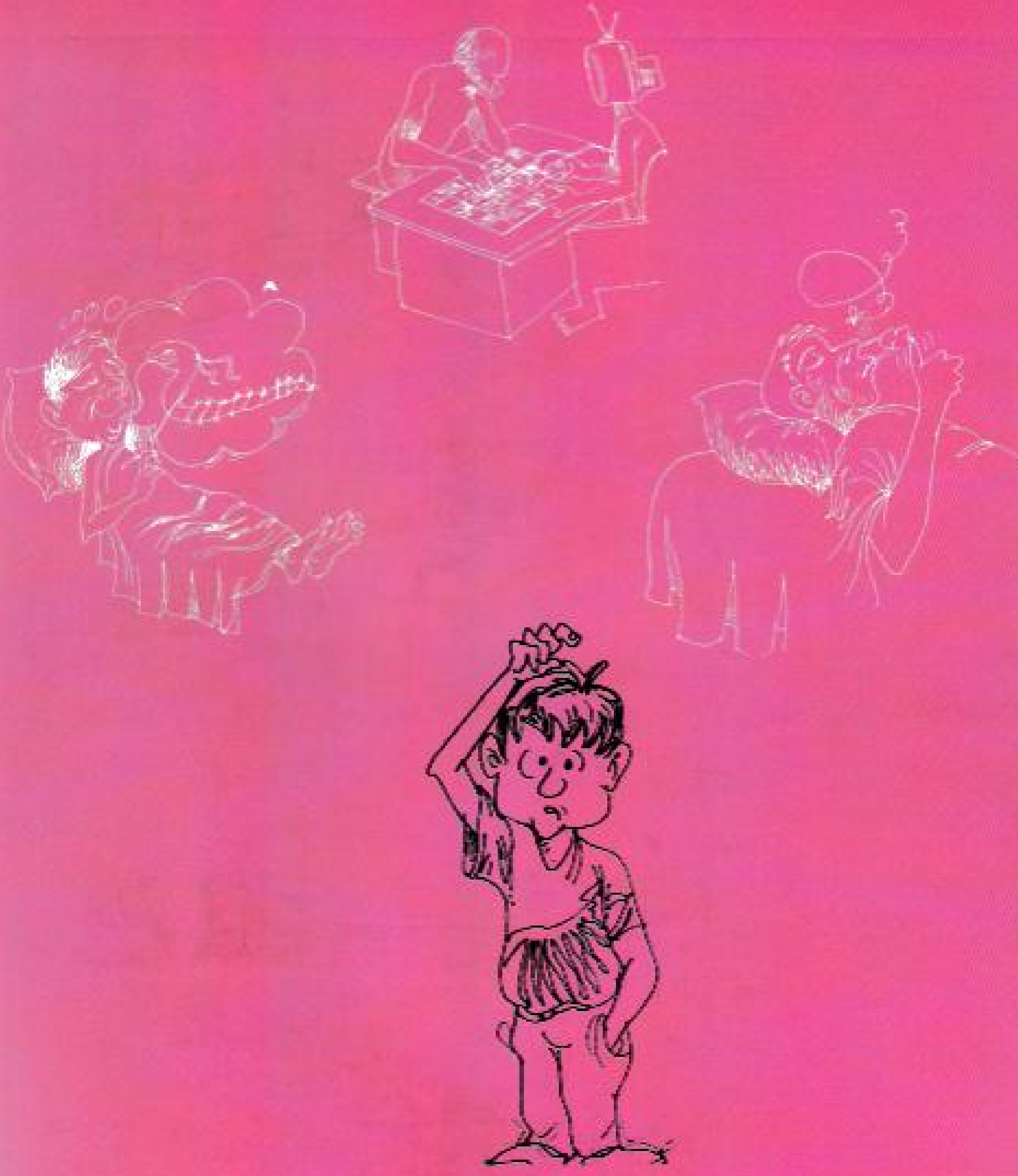

अनुराग ट्रस्ट